

आरती झा आद्या
दिल्ली

लघुकथा

पायल

थाने के मालखाने में बरामद सामान की सूची बन रही थी।
"एक मोबाइल... एक पर्स... दो सौ तीस रुपये... और एक चाँदी की पायल।"
सिपाही ने पायल उठाकर पूछा, "सर, इसकी जोड़ी नहीं मिली?
"नहीं।" दरोगा ने रिपोर्ट पर नज़र गड़ाए ही कहा।
तभी एक अधेड़ औरत भीतर आई।
"साहब... मेरी बेटी..."
दरोगा ने पायल उसकी ओर बढ़ा दी।
औरत ने उसे देखते ही सिर हिला दिया।
"ये मेरी बेटी की नहीं है।"
"लेकिन घटनास्थल से कुछ दूरी पर यह मिली है।"
औरत की पलकों पर नमी उतर आई,
"साहब, मैंने कई बार उसे पायल पहनने को कहा.... लेकिन मेरी बेटी रात की ड्यूटी करती थी और हर बार यही कहती, "माँ, सुनसान रास्तों पर पायल की आवाज़ बहुत दूर तक जाती है।"
कमरे में सन्नाटा पसर गया। दरोगा ने धीरे से पायल वापस मेज़ पर रख दी।

पवन-पुरवाई

सुबह से दोनों के बीच बोलचाल बंद थी।
कारण भी कोई बड़ा नहीं था, बस वही रोज़मर्रा की छोटी-सी तकरार, जो पति-पत्नी के बीच अक्सर होती है और दिन भर दीवार बनकर खड़ी रहती है।
जब शाम ढली तो दोनों अपने-अपने काम से छत पर आ गए। वह छत के इस छोर पर खड़ी थी, वह दूसरे छोर पर आ खड़ा हुआ था।
बीच की ख़ामोशी छत से कहीं ज़्यादा लंबी लग रही थी।
तभी जाने कहाँ से पुरवाई का एक चंचल झोंका आया।
तार पर सूखती चादर फड़फड़ाई, फिर उड़कर आसमान की ओर उछल गई।
दोनों लगभग एक साथ उसकी ओर लपके। चादर हवा में लहराती चली गई, लेकिन उसे पकड़ने की हड़बड़ी में दोनों के हाथ पहले एक-दूसरे से टकराए।
न जाने किसने पहले किसका हाथ थामा...बस, दोनों की उँगलियाँ एक-दूसरे में उलझ गईं।
दोनों उलझी उँगलियाँ लिए वहीं ठिठक गए और चादर भी पड़ोसी की छत पर जा गिरी थी। मगर जो उड़ गया था, वह अहंकार था।
उसने धीरे से हाथ छुड़ाना चाहा।
उसने पकड़ और कस दी।
“छोड़िए...” आवाज़ में सुबह वाली नाराज़गी नहीं थी।
वह मुस्कराया, “गलती पवन-पुरवाई की है...”
वह भी मुस्करा दी, “हाँ... हर बार कुछ न कुछ उड़ाकर ले जाती है।”
“नहीं...” उसने उसकी हथेली को हल्के से दबाया।
“इस बार तो... लौटा भी गई है।”
नीचे आँगन में चादर अभी भी बिखरी हुई थी।
लेकिन छत पर बिखरी नाराज़गी जाने कहाँ उड़ चुकी थी।
पुरवाई देर तक चलती रही... जैसे उसे भी दो हथेलियों का फिर से मिल जाना अच्छा लगा हो।